असहयोग आन्दोलन में मजदूरोंकी भूमिका

अनामिका कुमारी

और

श्री मदन मोहन सिंह

इतिहास विभाग

जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

****

असहयोग आन्दोलन में मजदूर वर्ग

1905 से 1908 तक चला बंगाल विभाजन के खिलाफ आन्दोलन और तिलक की गिरफ्तार और छ साल की सजा के विरोध में :1908 में मजदूरो की छ : दिवसीय हड़ताल की चर्चा अगर छोड़ दी जाय तब प्रथम विश्व युद्ध के बाद रॉलट बील के विरोध में आन्दोलन और असहयोग आन्दोलन को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में पहला जन आन्दोलन कहा जा सकता है। रॉलट बील के खिलाफ शुरू किया गया आन्दोलन और इसका सरकार द्वारा किए गए दमन के बाद भी जब आन्दोलन एक क्रन्तिकारी उभार का रूप ले लिया तब इसकी वापसी राष्ट्रीय आन्दोलन के उच्च वर्गीय नेतृत्व की साम्राज्यवाद के साथ समझौता परस्ती की नीति को सामने ला दिया । इसके बाद 1919 से 1920 के काल में युद्धजनित आर्थिक संकट के खिलाफ भारत में जब मजदूर आन्दोलनों का जबरदस्त सिला चला तब इसने कांग्रेस नेतृत्व के द्वारा मौन्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों को समर्थन द-ेने की जमीन ही खिसका दी। असहयोग आन्दोलन इसी के परिणाम स्वरूप शुरू किया गया आन्दोलन था ।

इन सारे आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में वैश्विक पैमाने पर घटित हो रही क्रन्तिकारी घटनाएँ थी जो भारत के मुक्ति संघर्ष को प्रभावित कर रही थी।1905 की

रूसी क्रांति और एशियाई जापान की जारशाही रूस पर विजय थी , जिसने यूरोपीय खेमें की अपराजेयता के मिथक को हमेशा के लिए समाप्त कर औपनिवेशिक देशों में चल रहे राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों को नई प्रेरणा दी थी , तो 1919 में कमिनटर्न द्वारा स्थापित राजनीतिक दिशा के आलोक में 21 मार्च, 1919 को हंगरी में एक सोवियत सता की स्थापना,' बरबरिया में 13 अप्रील, 1919 से 1 मई, 1919 तक और स्लोबाकिया में 16 जून, 1919 से जुलाई, तक सोवियत सत्ता की स्थापना आदि जैसी घटनाओं ने औपनिवेशिक देशों में चल रहे मुक्ति खासकर मजदूर -आन्दोलनों को- एक क्रान्तिकारी दिश- वर्ग कोा प्रदान किया था। 1919 और 1920 के वर्षों में विभिन्न देशों में मजदूर पार्टियों और साम्राज्यवाद विरोधी विभिन्न जन संगठनों के निर्माण के बाद एक -कानूनी रूप में की गई थी- जिनमें कई की स्थापना गैर -विश्वव्यापी क्रान्तिकारी लहर का उद्भव देखा गया था।

1919 के बाद के वर्षों में भारत में मजदूरों के संगठित आन्दोलनों और उनके अपने जन संगठन अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन की स्थापना के साथ साथ आर्थिक-मांगों के राजनीतिक स्वरूप में बदलने तथा आन्दोलन को राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन से सम्बद्ध करने की प्रतिबद्धता, रौलेट बील के विरोध और प्रिन्स ऑफ वेल्स के भारत आगमन पर उनके खिलाफ किया गया आन्दोलन असहयोग आन्दोलन के लिए क्रमश जमीन तैयार करने और आन्दोलन को एक क्रान्तिकारी ऊँचाई तक ले : जाने में सहायक बने।

रॉलट बील के खिलाफ आन्दोलन और असहयोग आन्दोलन में मजदूर वर्ग की बढ़ी पहल के कारणों की छानबीन से इसके दो प्रमुख कारण सामने आते हैं।युद्ध के बाद के वर्षों में भारतीय राजनीतिक का जो परिदृश्य उमड़ा उसमें दो कारक ऐसे थे जिन्होनें कांग्रेस नेतृत्व का सरकार के साथ सहयोग करने सम्बन्धी नीति से मोहभंग कर दिया । वे कारक थे जन आन्दोलनों का , खासकर मजदूर वर्ग के आन्दोलनों का , बढ़ता दबाव और उसका क्रान्तिकारी स्वरूप तथा दूसरा , साम्राज्यवादी शासकों द्वारा अपनाई जा रही दमनात्मक नीतियाँ , जो पहले मजदूर आन्दोलनों के खिलाफ उठाए गए कदमों की श्रृंखला थीं और बाद में रौलट ऐक्ट

को पारित कर सामान्य नागरिक अधिकारों को ही समाप्त करने की तरफ बढ़ गई थी। इन दोनों ही कारकों का उद्गम स्थल एकथा और वह था युद्धोतर काल में आया आर्थिक संकट तथा सरकार द्वारा वित्तीय पूँजी की शोषण प्रणाली को भारत में लागू-

किया जाना । इसी के कारण साम्राज्यवादी शासकों के संरक्षण में भारतीय पूँजी ओर ब्रिटिश पूँजी के साथ जनता के बढ़ रहे अन्तर्विरोधों के कारण जनमानस उद्वेलित था और साम्राज्यवादी सत्ता जब राजनीतिक रूप समाधान करने में विफल हो गई तब राजसत्ता के द्वारा बल पूर्वक इसे दबाने का एक सिलसिला चल पड़ा ।

सरकार की दमनात्मक नीति ने ही भारत में साम्राज्यवाद विरोधी एक संयुक्त मोर्चा की गठन की पहली शर्त बनी । अब कांग्रेस का मोहभंग हो चुका था औरसमाचार पत्रों में यह प्रमुखता से छपने लगा था कि अगर रॉलट बील कानून का रूप ले लिया तब इसका इस्तेमाल खिलाफत आन्दोलन के खिलाफ इस्तेमाल किया जाएगा। इससे मुस्लिम लीग भी सकते में आ गई थी । इस प्रकार भारत का सम्पूर्ण राजनीति साम्राज्यवादी शासन के खिलाफ एक सशक्त आन्दोलन की शुरूआत के लिए तैयार हो गया था।फरवरी , 1919 में ही रौलेट बील को इम्पेरियल काउन्सिल में पेश कर दिया गया।

काउन्सिल के भीतर और बाहर दोनों ही जगहों में विरोध का स्वर काफी मजबूत था । 24 फरवरी को ही हार्नीमैन, जमुनादास द्वारिकादास-, उमर सोमानी, श्री मती नायडु आदि बम्बई से अहमदाबाद जाकर गाँधी से मुलाकात किए। उनकी इन पेशकदमियों के जबाव में गाँधी ने एक कड़े शब्दों वाला टैलीग्राम वायसराय को भेजा जिसमें उन्होंने लिखा था कि अगर सरकार रौलेट बील को कानूनी दर्जा देकर लागू करने की तरफ मुखातिब होगी तब वे सरकार की इस कार्रवाई के खिलाफ सत्याग्रह शुरू कर देगें। (पैसीव रेसिस्टेन्ट)

रॉलट बील के खिलाफ गाँधी ने जब पैसीव रेसिस्टेन्स शुरू करने की घोषणा की तब होम रूल के नेता हार्नीमेन , जमुना दास आदि उनके साथ हो गए , मगर उदारवादी नेताओं ने एक मेमोरेन्डम देकर यह जताया कि वे उग्रवादी नेताओं के

साथ इस आन्दोलन में होंगे होमरूल लीग के नेता इस सत्याग्रह आन्दोलन में शामिल हो गए और उदारपंथियो के मेमोरेन्डम की खिल्ली उड़ाई । इस तरह आन्दोलन शुरू होने के पूर्व ही आन्दोलन दो वैचारिकताओं में विभाजित हो गया । यह विभेद से वैचारिकताओं का संघर्ष सामने आ गया।इन दो वैचारिकताओं के बीच के टकराव का क्षेत्र भारतीय पूँजी की स्थिति के संदर्भ में दीखा ।

9 मार्च, 1919 को जब रॉलट बील का ऐक्ट का रूका समाचार आया तब मजदूर आन्दोलनों का एक सिलसिल पड़ा। 11 मार्च, 1919 को प्रसिद्ध मेला मिलापुर के मौके पर जो ट्राम कम्पनी अतिरिक्त ट्रामों को चलाती थी , उस ट्राम कम्पनी के कर्मचारियों ने रौलेट बील के खिलाफ हड़ताले कर दी।18 मार्च को बील को ऐक्ट में रूपान्तरण किया गया,इसके बाद 20-21 मार्च, 1919 से बील का ऐक्ट बन जाने के खिलाफ आन्दोलन का बिगुल मुल्जी जेथा मिल के व्यापारियों द्वारा बाजार की बंदी से आरम्भ हो गया जिसका अनुशरण अन्य बाजारों के व्यापारियों ने भी किया। 24 मार्च, 1919 को गाँधी ने मद्रास से ही 6 अप्रैल, 1919 को आम हड़ताल का नारा दिया और उसे दिवस के रूप में मनाने और (नेशनल ह्यूमिलियन) " राष्ट्रीय बेइज्जत " प्रार्थना करने के दिन के रूप में मनाने को कहा।

4 और 5 अप्रील,1919 को गाँधी ने अपने भाषणों में मजदूरों से हड़ताल करने की अपील की जिसकापरिणाम था कि विशाल प्रतिरोध प्रर्दशनों का एक सिलसिला शुरू हो गया और एलिश ब्रीज के पास संगठित की गई एक सभा में करीब 20,000 लोगों ने हिस्सा लिया और अहमदाबाद में लोग सड़कों पर निकल आए और दुकानों को बंद कराने लगे इन सारे प्रतिरोध प्रदर्शनों में सबसे सशक्त विरोध प्रदर्शन मील मजदूरों का था, उन्होंने हड़ताले कर दी । पुलिस ने उनपर गोलियाँ चलाई।10 अप्रील, 1919 के गोली काण्ड में 10 व्यक्ति बुरी तरह घायल हुए और एक मासूम बच्चे की दूसरे दिन मौत हो गई ।

11 अप्रैल, 1919 को वातावरण में अपेक्षाकृत ज्यादा उत्तेजना थी ।मजदूर बौखलाए हुए थे और इसी स्थिति को देखते हुए सरकार ने और ज्यादा कठोर

कार्रवाई का आर्डर दिया।यह आर्डर दिया गया कि जहाँ कहीं भी 10 या इससे ज्यादा व्यक्ति जमा दीखे उनपर गोली चलाई जाय और कोई भी व्यक्ति शाम 7 बजे से सुबह के 6 बजे के बीच अपने घर से बाहर दीखे और रूकने के लिए कहे जाने पर न रूके तब उसे गोली चलाकर मार दिया जाय।उसी दिनमजदूरों का एक जत्था एलिस ब्रीज, प्रेम दरवाजा और रेलवे स्टेशन के पास जमा हुआ जिसमें 2000 से 3000 व्यक्ति शामिल थे।पुलिस ने उनपर गोलियां चलाई । सदर अस्पताल की रिपोर्ट के मुताबिक 50 व्यक्ति, जिन्हें बुलेट का घाव था।अनेकों ऐसे थे जो अस्पताल आए ही नहीं ।अहमदाबाद जैसे औद्योगिक शहर में करीब 250 व्यक्ति पुलिस की गोली से आहत हुए थे और 20 मारे गए थे ।उपर के आँकड़े दमन की कठोरता के साथ साथ उसके खिलाफ लोगों के प्रतिरो-धपंजाब में रॉलट बील के खिलाफ आन्दोलन की मुख्य प्रेरक शक्ति लघु उद्योगों में लगे उत्पादनकर्ता मजदूर थे, जिन्हें साम्राज्यवाद ने बर्वाद कर दिया था । इसका मुख्य संकेन्द्रण अमृतसर रहा था जो रॉलट बील आन्दोलन का मुख्य केन्द्र बना था। हलाँकि बम्बे और अहमदाबाद की तरह इन मजदूरों का कोई संगठन नहीं था , मगर रॉलट बील की मुखालफत ने इन्हें एकता में पिरो दिया ।

10 अप्रील, 1919 को जब बम्बे और अहमदाबाद में रॉलट बील विरोधी आन्दोलन परवान चढ़ा हुआ था तब अमृतसर में भी इसकी परिणति आन्दोलनों के विकास में हो रही थी। 10 अप्रैल, 1919 को ही पंजाब के दो वरिष्ठ नेताओं शैफुद्दीन किचलू और डा० सत्यपाल को गिरफ्तार कर ब्रिटिश सरकार ने अज्ञात जगह पर जब भेज दिया तब 13 अप्रील, 1919 को अमृतसर और उसके आसपास के करीब 20,000 लोग अमृतसर के 4 जालियाँवाला बाग में एक सभा में जब जमा हुए और सभा शान्तिपूर्वक चल रही थी तभी उन निहत्थी जनता पर जेनरल ओ डायर ने . गोली चलाने का आदेश दिया । इस गोली काण्ड में400 व्यक्ति मारे गये और इस संख्या के तीन गुणा यानि 1200 बुरी तरह घायल हुए।ब्रिटिश सरकार की इस निर्दय कार्रवाई के खिलाफ सम्पूर्ण देश में एक ऐसी रोष की लहर व्याप्त हुई कि इसके विरोध में प्रायः सभी वर्ग शक्तियों का एक साथ ध्रुवीकरण होकर एक व्यापक

साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे का रूप ग्रहण कर लिया।

रॉलट बील के खिलाफ आन्दोलन को जब गाँधी ने ऐसे समय में स्थगित कर दिया जब वह एक क्रन्तिकारी मोड़ पर पँहुचा हुआ था तब सरकार का हौसला काफी बढ़ गया । आन्दोलन के स्थगित हो जाने के बाद स्थितियों ने सरकार को यह मौका प्रदान कर दिया कि वह दमन के ड्राकोनियन उपायों को संगठित कर सके।उसका प्रभाव तो इतना भयावह था कि गाँधी भी पंजाब में सरकार द्वारा किए गए अमानवीय अत्याचारों के खिलाफ सदर नाफरमानी आन्दोलन को शुरू करने की हिम्मत जुलाई, 1919 के पहले नहीं कर सके ।

सरकार का यह बयान कि किसी भी तरह के नाफारमानी आन्दोलन के द्वारा कानून और विधि व्यवस्था में खलल डालने पर उसके भारी और कठोर परिणाम-होने, यही वह आशंका या भय था जिसके कारण गाँधी ने अपने बयान में कह दिया किहमें सदर नाफरमानी के आन्दोलन को नहीं शुरू करना चाहिए।गाँधी ने आगे लिखा किपंजाब के प्रति किए गए अत्याचारों की जाँच के लिए एक कमिटी का गठन किया जा चुका है। और मैं पंजाब के नेताओं और सत्याग्रहियों से अपील करूँगा कि वे स्वदेशी तथा हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए प्रचार के कार्यों में-लग जाय ।

20 असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि और मजदूर वर्ग:

असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि के निर्माण में जहाँ दमन एक कारक की भूमिका में दीखा वहीं आर्थिक दमन का स्वरूप भी अपेक्षाकृत ज्यादा कड़वा था ।युद्ध काल में शोषक की सबसे बड़ी संस्था के रूप में ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन ही उभर कर सामने आया करीब करीब सैनिक खर्चों में पाँच गुणा ज्यादा की-बढ़ोतरी के बाद भारत की जनता से प्रतिवर्ष3,00,00,000 पाउण्ड की वसूली की जाने लगी थी, भारत से अत्यधिक मात्रा में कच्चा माल निर्यात किया जाने लगा था और वह भी अतिशय कम मूल्य की अदायगी करके।भारत में कच्चा माल के निर्यात की स्थिति नीचे की तालिका दर्शाती है –

युद्ध काल में भारत से इंगलैण्ड निर्यात किए जाने वाले खनीज पदार्थों का आकलन।

क्रमांक	वस्तुयें	मात्रा
1.	मैंगनीज	2 मिलियन टन
2.	अबरख	6,000 टन
3.	सल्फर	90,000 टन
4.	लकड़ी (टीम्बर)	1,85,000 क्वीवीक मीटर
5.	कच्चा जूट	20,00,000 टन
6.	बोरा	3,000 मिलियन
7.	सूती वस्त्र	4,000 मिलियन गज
8.	चमड़ा	12 मिलियन टन
9.	गेहूँ	30,00,000 टन

निर्यात किए जाने वाले मैगनीज, सल्फर, और सूती वस्त्रों की कीमत क्रमश : 22,50,000, 20,00 ,000 और 13,70,00,000 पाउण्ड या 2,00,00,00,000 रुपया आँका गया था। 1914-15 और 1918-19 के काल में यह मौद्रिक दासता ही थी जिसके तहत साम्राज्यवादी शासकों ने भारत को लूटा, और आर्थिक दासता उनके उपर लाद दिया। करों को 50 प्रतिशत बढ़ा दिया गया जिससे जनता की तबाही का आलम अपने शिखर पर जा पहुँचा।

अब ब्रिटिश शासकों के साथ भारतीय पूँजी के स्वार्थों के टकरावों के साथ साथ अब एक नया अन्तर्विरोध भी सामने आ गया था जो उद्योगों में लगी पूँजी और उनमें कार्यरत मजदूरों के बीच के टकरावों के रूप में सामने आ गया था।युद्ध के बाद भारत में ब्रिटिश शासकों की औद्योगिक नीति में आए बदलाव का खास आधार थाजो मूलतः सैनिकरणनीतिक कारणों-, आर्थिक प्रतिस्पर्धात्मक कारणों और ब्रिटिश शासकों के खिलाफ भारत में चल रहे राजनीतिक संघर्षों के कारणें से था। युद्ध काल और उसके बाद भारतीय पूँजी को जो सहूलियतें मिली उसका फायदा भारतीय पूँजी ने बखूबी उठाया।फिर भी, साम्राज्यवादी ब्रिटिश शासकों द्वारा भारत के संदर्भ में अपनाई जा रही बदली आर्थिक नीति का उद्देश्य कतई भारत का औद्योगिकरण करना नहीं था, बल्कि सुरक्षात्मक टेरीफ को लगाकर एक ऐसी प्रणाली की स्थापना करना था जिससे भारत के बाजार की सुरक्षा की जा सके ।

वास्तव में ब्रिटिश सरकार का मूल मकशद था भारत में वित्तीय पूँजी के शोषण को और ज्यादा धनीभूत करना और भारत में ब्रिटिश राज को औद्योगिक पूँजी के राज से वित्तीय पूँजी के राज में संक्रमण करा देना ताकि ब्रिटिश वितीय पूँजी के स्वार्थों को बखूबी भारत के शोषण का अवसर उपलब्ध हो जाय । मगर इस काल में भी भारत ब्रिटिश औद्योगिक पूँजी के शोषण से बजाप्ता मुक्ति नहीं पा सका, यह बदस्तुर कायम रही और भारत दोहरे शोषण के शिंकजे में पड़ गया । इस व्यवस्था ने सबसे ज्यादा शोषण मजदूरों का ही किया अब उद्योग चाहे भारतीय पूँजी के स्वामित्व में हो या ब्रिटिश पूँजी के शोषण का चक्र दोनों जगह समान्य रूप से चल रहा था ।

असहयोग आन्दोलन के समय मजदूरों का शोषण:

असहयोग आन्दोलन का फैसला किए जाने के समय मजदूरों का शोषण एक अप्रतिम उँचाई पर था और इस शोषण का अपनाया गया प्रमुख तरीका था कम मजदूरी दिया जाना और काम के घंटों का अतिशय लम्बा होना। इसके साथ साथ भारतीय कर्मचारियों और ब्रिटिश कर्मचारियों के वेतन और अन्य सुविधाओं में जो

बड़ा फर्क था वह भी मुनाफा कमाने और भारत के शोषण का एक बड़ा कारण बन गया था।बंदरगाहों और समुद्री आयात निर्यात के धंधे में लगे कर्मचारियों और-मजदूरों के साथ भारतीय और ब्रिटिश मजदूरों के बीच किए जाने वाले विभेदीकरण का आलम इसको स्पष्ट करने के लिए काफी है। एक यूरोपियन या ब्रिटिश कैप्टेन या इन्जिनियर 300 रूपये प्रतिमाह से जहाँ नौकरी की शुरूआत करता था वहीं उसी पद पर और उसी काम को करने वाले एक भारतीय कैप्टेन या इन्जिनियर को मात्र 40 रुपया ही प्रतिमाह मिल पाता था और इसमें क्रमिक गति से होने वाली बढ़ोतरी का प्रावधान तो था मगर यह बढ़ोतरी कभी भी , और किसी भी हालात में, 80 रूपये प्रतिमास से ज्यादा हो ही नहीं सकती थी।

भारतीय मजदूरों की दयनीय स्थिति का आकलन एक सर्वे के रिपोर्ट में आया। 3,125 निवास घरों का, जिसमें एक या एक से ज्यादा परिवार वास कर रहे थे, सर्वे करने पर पता चला कि इन निवास घरों में से 1955 घरों में दो परिवार (सभी मकान एक कमरा के थे), 558 में तीन परिवार, 242 में चार परिवार, 136 में पांच परिवार, 42 में छपरिवार :, 34 में 7 परिवार, और 58 में 8 परिवार, सम्मिलित रूप से रह रहे थे। विस्तार सम्मिलित थे और इन मजदूर बस्तियों में बाल मृत्यु दर काफी ऊँची थी। एक अन्य तथ्य , जो मजदूरों की दुर्दशा को चिह्नित करता था वह था, मजदूरों का कर्ज में डूबा होना । रिपोर्ट में बताया गया था, कि इन बस्तियों में रहने वाले 47 प्रतिशत मजदूर कर्ज के गहरे जाल में फंसे थे और 37 प्रतिशत उधार में खरीद करते थे।

मजदूरों के वेतन में कटौती आदि से मजदूर वर्ग की क्रय शक्ति का जो ह्रास हुआ था इससे भारत का आन्तरिक बाजार सिकुड़ता चला गया , क्योंकि एक बड़ी आवादी ब्रिटिश मालों का खरीददार नहीं रह गई अब यह प्रकिया इंग्लैण्ड के मजदूरों को भी कुप्रभावित किया।

अक्तूबरकीरूसीक्रान्ति और कमिनटर्न की राजनीतिक लाइन के परिप्रेक्ष्य में भारतीय मुक्ति आन्दोलन में लगे समाजिक जनवादी वैचारिकता वाले नेताओं पर

लेनिन का प्रभाव काफी गहरा दिखा । खासकर , साम्राज्यवाद विरोधी विभिन्न वर्ग शक्तियों की एकता के निर्माण की दिशा में आगे बढ़ने के लिए इन नेताओं ने सबसे पहले बिखरे मजदूर आन्दोलनों की एकता के लिए प्रयास शुरू किया । उनका प्रयास स्वतंत्रता आन्दोलन को एक ऐसी रणनीतिक लाइन पर गठित करने का था जिसमें जनभागीदारी को व्यापक रूप से स्थान प्राप्त रहे ।

असहयोग आन्दोलन और मजदूर वर्ग:

1919 की आखिरी और 1920 की शुरूआती छमाही में शुरू हुआ मजदूर आन्दोलन काग्रेस द्वारा साम्राज्यवाद के साथ किसी तरह के समझौता की सम्भावना को समाप्त कर दिया था। 1920 की समाप्ति तक उदारपंथियों में से भी सबसे उदारपंथी तक इस बात को स्वीकार करने लगे थे कि देश एक संकट कालीन स्थिति से गुजर रहा है । देश की स्थिति पर अपनी टिप्पणी में गाँधी ने कहा कि उनके लिए भीखमंगे का कटोरा अच्छा है इससे कि जालियाँवाला बाग के शहीदों के खून से रंगे सरकारी हाथों से सबसे वेशकीमती चीज को ग्रहण करना ।

पंजाब में की गई गलतियाँ और रॉलट बिल के सम्बन्ध में सरकार की हठधर्मिता के अलावा यह महसूस किया जा रहा था कि सरकार टर्की के सम्बन्ध में अपनी नीतियों में शायद ही कोई बदलाव लाए और खिलाफत आन्दोलन की मांगों को स्वीकार करें। इन्हीं परिस्थितियों में 1920 में गाँधी और कांग्रेस केप्रमुख नेताओं ने इस समय तक नरमदली नेता कांग्रेस छोड़ चुके थे । उन्होंने सुधारों के साथ सहयोग की बातों को ताक पर रख दिया और उभड़ते जन आन्दोलनों का- नेतृत्व करने का संकल्प किया इसके लिए उन्होंने अहिन्सात्मक असहयोग योजना तैयार की।

1 अगस्त, 1920 की तारीख को असहयोग को शुरू करने की तिथि के रूप में निर्धारित किया गया । इसकी घोषणा करते हुए गाँधी ने कहा यह कोई नहीं कह सकता कि रॉलेट एक्ट सम्भवत जिन्दा रहेगा उस हालत में जब उसके खिलाफ : आन्दोलन मात्र स्थगितइस प्रकार उभड़ते क्रान्तिकारी आन्दोलनों का नेतृत्व

सम्हालते हुए गाँधी ने अहिन्सात्मक असहयोग शुरू करने की वचनबद्धता तो दे दिया मगर आन्दोलन के क्रान्तिकारी चरित्र के प्रति अभी भी उनके मन के अन्दर एक भय व्याप्त था और उसी के निवारण के कारक के रूप में आन्दोलन को अहिंसात्मक रहने की शर्त भी लगा दी गई थी ।

भूमिका

भारत का आधुनिक इतिहास राष्ट्रीय आन्दोलन के उस चरित्र को दर्शाता है जो एक साम्राज्यवाद विरोध की राजनीतिक और आर्थिक नीतियों के आधार पर लड़ा गया एक ऐसा मुक्ति आन्दोलन था जिसे साम्राज्यवाद विरोधी तमाम वर्ग शक्तियों के एक संयुक्त मोर्चा के द्वारा लड़ा गया था । इसमें भारत में नवोदित राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग से लेकर मजदूर वर्ग , किसान समुदाय, मध्यवर्गी बुद्धिजीवियों का तबका और शहरी निम्नपूँजीपति वर्ग की एकता थी-।आन्दोलन के प्रत्येक चरण में भारत के मजदूर वर्ग की भूमिका एक सशक्त उपनिवेशवाद विरोधी कारक के रूप में देखी जा सकती है।

राष्ट्रीय आन्दोलन के आरम्भिक वर्षों में मजदूर वर्ग :

यों तो इतिहासकारों ने 1857 के आन्दोलन को भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम मान लिया है जो सही भी है। मगर यह संग्रामकिसी निर्धारित योजना के तहत चलाया गया और एक सर्वमान्य लक्ष्य के लेकर किया गया संघर्ष नहीं दीखता । इसके पूर्व भारत में कई किसान संघर्ष हुए थे । 1857 के बाद के वर्षों में ब्रिटिश नीति में काफी बदलाव आता दीखा । 1961 के इन्डिया काउन्सिल ऐक्ट को लाकर उपनिवेशवादी शासकों ने भारतीय उच्च वर्ग को प्रशासनिक कार्यों में शामिल करने का एक सिलसिला चलाया मगर किसानों और नीचले आर्थिक स्तर के लोंगों का शोषण बदस्तुर न सिर्फ जारी रहा। इस कारण भारत में किसान विद्राहों का एक सिलसिला सा चल पड़ा-।

एक दूसरी प्रक्रिया जो 1857 के बाद भारत में शुरू हुई , वह थी भारतीय पूँजीपति वर्ग का उदय और औद्योगिक क्षेत्र में भारतीय पूँजी का प्रवेश खास कर- कपड़ा उद्योगों में।ब्रिटिश मालों का व्यापार कर और चीन के साथ अफीम के व्यापार से अर्जित धन के कारणभारत के वणिक पूँजीपति अब अपनी पूँजी निवेश को उद्योगों की तरफ ले जाने की चाहत के साथ कई भारतीय सूती मिलों की स्थापना किए। इस कारण मजदूर वर्ग का उदय और मजदूर आन्दोलनों का एक असंगठित, मानवतावादी विचारों से प्रेरित आन्दोलनों का जन्म होने लगा।

कांग्रेस के गठन)1885) के बाद :

जिन मकशदों को लेकर कांग्रेस का गठन किया गया था , वह साम्राज्यवादी उद्देश्य तीन साल तक भी प्रभावकारी नहीं रहा , क्योंकि तीन साल के भीतर ही कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच का टकराव बढ़ता नजर आया । सरकार ने बजाप्ता एक सर्कुलर जारी कर अपने कर्मचारियों को कांग्रेस के कार्यक्रमों से अलग रहने की हिदायत दी ।मगरअपनी स्थापना के बाद के 20 वर्षों तक कांग्रेस ने किसी जन आन्दोलनों को गठित नहीं किया 20 वर्षों तक कांग्रेस सरकारके सामने संवैधानिक दायरे में ही कुछ प्रशासनिक संस्थाओं में भारतीयों के प्रतिनिधित्व के लिए आवेदनवादी कार्यों को करती रही ।मगर 20वीं सदी में वैश्विक घटनाक्रमों का कांग्रेस पर जो असर पड़ा उसके कारण भारतीय राजनीति की दिशा में जो बदलाव आया उसका नतीजा हुआ कि भारतीय मजदूरवर्ग एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में क्रमिक गति से समाने आने लगा । इन कारकों में प्रथम कारक था 20वीं सदी में साम्राज्यवाद के चरित्र में वैश्विक पैमाने पर आने वाला बदलाव और दूसरा कारक था विश्वक्रान्तिकारी प्रक्रिया की वैचारिकता का उदय और उसका विस्तारित होता क्षेत्र तथा विश्व राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों पर पड़नेवाला उसका प्रभाव । 1905 के जागरण में अन्य कारकों के आलावा जिन दो प्रमुख कारकों ने भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन को नई जागरूकता प्रदान किया उसमेंजारशाही रूस पर एशियाई जापान की विजय और 1905 की रूसी क्रांति थी।

1905 में बंगाल विभाजन की जिस योजना को लार्ड कर्जन ने तैयार किया था उसके खिलाफ आन्दोलन के स्वरूप को विदेशी सामानों के बहिष्कार के रूप में सामने लाया गया।1906 के कांग्रेस अधिवेशन में बहिष्कार को समर्थन दिया गया , स्वदेशी या देशी उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन देने का समर्थन किया गया , राष्ट्रीय शिक्षा की हिमायत की गई और ब्रिटिश सरकार के मातहत रहते हुए भारत को स्वयं अपना शासन चलाने के अधिकार की यानी स्वराज की मांग की गई। अब राष्ट्रीय आन्दोलन की चार मुख्य मांगें बन गई स्वराज , विदेशी मालों का बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा ।

स्वदेशी पूँजी का उद्योगों में प्रवेश :

1905 में स्वदेशी के प्रस्ताव को स्वीकार कर राष्ट्रीय आन्दोलन को जिस तरह एक नई दिशा देने की कोशिश की गई, उसका नतीजा सिर्फ यही नहीं हुआ कि देश में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार का आन्दोलन तेज हुआ , बल्कि आर्थिक क्षेत्र में भी भारतीय पूँजी का प्रवेश शुरू हो गया और 19 वीं सदी के आखिरी कुछ दशकों में भारत के कपड़ा उद्योगों में भारतीय पूँजी के प्रवेश की जो शुरूआत हुई थी वह प्रक्रिया बिस्तारित होकर अर्थ व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में भी फैलती गई ।

मजदूर आन्दोलन की शुरूआत:

हालाँकि अभी भी मजदूर वर्ग का कोई अपना वर्गीय संगठन नहीं बन सका था, फिर भी रेलवे, पोस्ट और टेलिग्राफ, शहरों केसफाई मजदूर, खानों में काम करने वाले कामगारों आदि का जिस प्रकार भारत में उदय हो चुका था उनमें अब सूती मिलों, जुट मिलों तथा अन्य उद्योगों में मजदूरों का सम्मिलित योगफल इस लायक संख्यात्मक दृष्टि से हो चुका था कि वह राजनीतिक कार्रवाइयों में भागीदारी कर सके।

मगर 1905 से वैश्विक क्रन्तिकारी घटनाओं का जो प्रभाव भारत पर पड़ा था उसने मजदूर वर्ग की चेतना को भी प्रभावित किया। 1905 से 1908 के काल में मजदूर वर्ग के जागरण का एक संक्षिप्त विवरण गोपाल घोष ने अपनी पुस्तिका मैडन स्ट्राइक्स इन इन्डिया में दिया है और बताया है कि इस काल में किस तरह मजदूर आन्दोलन एक जन आन्दोलन के रूप में आया और वह भी तब जब मजदूरों का अपना कोई वर्गीय संगठन नहीं था ।

मजदूर आन्दोलनों में उभाड़ की वजहें:

जिस तरह 1905 की वैश्विक क्रन्तिकारी प्रक्रिया ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को नई जागृति दी थी उसी तरह 20वीं सदी के शुरूआती दशकों में ही विश्व साम्राज्यवाद जिस रूप में सामने आ रहा था उससे मजदूर आन्दोलनों में भी तीखापन आना स्वभाविक दीखा। 20 वीं सदी का शुरूआती दशक ही यह दिखाने लगा था कि वैश्विक पैमाने पर साम्राज्यवादी मुल्कों के बीच एक नये किस्म के आर्थिक और राजनीतिक सम्बंधो का उदय हो रहा था। जिन पूँजीवादी मुल्कों में पूँजीवाद विकास के चरम बिन्दू तक जा चुका था उनमें साम्राज्यवादी प्रवृत्तियाँ प्रधान हो चुकी थी और विश्व बाजार के बँटवारे के लिए उनमें एक गलाकाटू प्रतिस्पर्धा प्रकट होने लगी थी और विश्व बाजार के पुर्नबँटवारे का एक अविराम संघर्ष जारी था। इस तरह की प्रतिस्पर्धा की शुरूआत के क्रम में सस्ते श्रम , कच्चे माल आदि के श्रोतों एवं तैयार मालों के बाजार के रूप में उपनिवेशों का महत्त्व काफी बढ़ गया था। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासक अब भारत के अन्दर सुरक्षात्मक कानूनी प्रावधानों के तहत ब्रिटिश पूँजी को संरक्षण प्रदान करना शुरू कर दिए थे और भारतीय पूँजी को बराबरी का दर्जा देने से इन्कार कर रहे थे।

इस तरह भारत में वित्तीय पूँजी के शासन का जो कुप्रभाव हो रहा था इसके कारण मजदूर वर्ग का शोषण और ज्यादा धनीभूत होता जा रहा था । स्वदेशीआन्दोलन भारतीय पूँजी को फायदा पहुँचा रहा था, भारतीय पूँजी भी ब्रिटिश

पूँजी के साथ प्रतिस्पर्धा में मजदूरों के शोषण को ही हथियार बना संघर्ष कर रही थी ।इस तरह भारत में एक त्रिकोणात्मक संघर्ष का आयाम खुलता जा रहा था ।

1905 की रूसी क्रान्ति और 1905 से 1908 तक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के उभाड़ के बाद आन्दोलन को मार्ले मिन्टों सुधार के साथ जिस तरह से समझौता-कर लिया गया था, उसको भारतीय क्रान्तिकारियों ने अस्वीकार किया , क्योंकि वे उस समझौता के पक्ष में न होकर भारत से ब्रिटिश राज की समाप्ति और भारत के लिए स्वराज चाहते थे। राम कृष्ण पिल्लई , लाला हरदयाल, सिंगाराभेलू चेट्टियार आदि इस समूह के ऐसे क्रान्तिकारी थे जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ एक समझौता विहीन संघर्ष की रणनीति की खोज में समाजवादी वैचारिकता से प्रभावित होकर, मार्क्सवाद की तरफ झूके।

मगर जिस तरह आन्दोलन को साम्राज्यवाद के साथ एक समझौता के कारक के रूप में इस्तेमाल किया गया उससे राष्ट्रीय आन्दोलन का एक क्रान्तिकारी तबका आन्दोलन से अलग होकर एक भिन्न रास्ते से साम्राज्यवाद के खिलाफ आन्दोलन को चलाने की दिशा में गया। भारत से बाहर जाने वाले क्रान्तिकारी यूरोप और एशिया के कई देशों में गए और भारत के मुक्ति संघर्ष को विश्व के अन्य देशों के साथ सम्बद्ध कर और मदद लेकर एक क्रान्तिकारी आन्दोलन को विकसित करने का प्रयास किया।

प्रथम विश्व युद्ध और मजदूर वर्ग का वैचारिक संघर्ष:

प्रथम विश्व युद्ध जब 1914 की गर्मियों में शुरू हो गया तब युद्ध के चरित्र के मामले में पूँजीवादी और मजदूर वर्गीय वैचारिकता के बीच एक वैचारिक संघर्ष वैश्विक पैमाने पर सामने आया । हालाँकि भारत में इस काल में मजदूर वर्ग की न कोई राजनीतिक पार्टी थी और न कोई राष्ट्रव्यापी जन संगठन ही बन पाया था, फिर भी इस वैश्विक वैचारिक संघर्ष का प्रभाव भारत पर पड़े बिना नहीं रह सका। अन्तराष्ट्रीय मजदूर आन्दोलन के लिए युद्ध दोनों तरफ से शोषकों का युद्ध था जो विश्व बाजार के बँटवारे, उपनिवेशों पर कब्जा करने आदि के लिए लड़ा जा रहा था।

क्रान्तिकारी राजनीतिक शक्तियों को, खासकर, यूरोप की सामजिक जनवादी पार्टियों को इस युद्ध के प्रति अपनी वैचारिक स्थिति को स्पष्ट करने और एक शोषकों के युद्ध का विरोध करने का दायित्व सामने था।

अब विश्व क्रान्तिकारी आन्दोलन में स्पष्टत: तीन प्रवृतियों का उदय हो चुका था , जो थी: 1. सामाजिक अंधराष्ट्रवादी (शोसल सोवनिस्ट)

2. मध्यमार्गी (सेन्टरिस्ट) और

3. क्रान्तिकारी अन्तर्राष्ट्रीयतावादी (रिभोल्यूसनरी इन्टरनेशनलिस्ट)

जिन समाजवादी-जनवादी दलों ने अपनी पूँजीवादी सरकारों के साथ 1914 से शुरू हुए युद्ध में एकता कायम कर उनका समर्थन करने लगी उनके इस अवसरवादी कार्रवाई के सम्बन्ध में विश्व क्रान्तिकारी आन्दोलन के रूख को स्पष्ट करते हुए लेनिन ने कहा थाः समाजवादी क्रान्ति के लिए मजदूर वर्ग के संघर्ष की एकता की मांग है कि मजदूर वर्ग की पार्टियों को इन अवसरवादियों की पार्टियों से अपने को पूर्णत: अलग कर ले ।

13 जुलाई, 1914 को सर्विया की संसद स्कुपलीना में जब युद्ध के कर्जों के सम्बन्ध में बहस चली तब सर्विया के समाजवादियों ने इसके खिलाफ वोट किया। उनकी इस क्रिया की प्रशंसा करते हुए लेनिन ने उनके कार्यों को विश्व क्रान्तिकारी सर्वहारा के बुनियादी सिद्धान्तों के प्रति अटूट आस्था की संज्ञा दी।1916 के वसन्त के शुरू में यूरोपीयन देशों में वर्ग संघर्ष काफी घनीभूत हो गया था और जन क्रान्तिकारी आन्दोलन एक निर्णायक मोड़ पर आ गया था । युद्ध के मोर्चे पर हो रही बड़े पैमानेपर मौतें , युद्ध जनित आर्थिक संकट के कारण व्याप्त बड़े पैमाने पर फैल रही भूखमरी , और जीवन निर्वाह के खर्चों में आ रही भारी बढ़ोतरी आदि का सम्मिलित परिणाम था कि जन असंतोष ओर युद्ध के खिलाफ भावना बड़े पैमाने पर फैल रही थी। यह मजदूरों और निम्न पूँजीवादी वर्ग दोनों में व्याप्त थी युद्ध में लड़ रहे सैन्य बलों के बीच भी असंतोष के उदाहरण दीख पड़ते थे जो दोनों पक्षों की सेनाओं में एक तरह के भ्रातृत्व के भाव के रूप में

सामने आ रहा था। इसी बदल रहे संदर्भ में अप्रील , 1916 में केन्थल (स्वीटजरलैण्ड) में दूसरा जीमरवाल्ड सम्मेलन हुआ। 1916 की समाप्ति तक विश्व राजनीति में एक बदलाव आया और वह बदलाव था , साम्राज्यवादी युद्ध से साम्राज्यवादी शान्ति की ओर जाने का । क्रान्तिकारी आन्दोलनों के बदलाव के कारण साम्राज्यवादियों के एक तबके में क्रान्ति का एक भय समा गया था और अब वे इस शोषणकारी युद्ध की समाप्त चाहने लगे।

1916 में ही भारत में कुछ नई प्रवृत्तियाँ जन्म ले लीं। तिलक ने होमरूल लीग की स्थापना की , कांग्रेस-लीग का समझौता हो गया और अब भारतीय पूँजीपति वर्ग , जो कांग्रेस और मुस्लिम लीग दो राजनीतिक दलों में विभाजित था, एकताबद्ध होकर साम्राज्यवाद केसाथ अपेक्षाकृत ज्यादा मजबूत स्थिति के साथ मोल-तोल करने की स्थिति में आ गया था। इन सबसे बढ़कर भारत में साम्राज्यवाद के खिलाफ जन प्रतिरोध का भाव विकसित हो रहा था जिसके पीछे साम्राज्यवादी युद्ध जनित आर्थिक कारक काम कर रहे थे। ऐसी स्थिति में ही जब साम्राज्यवाद युद्ध जनित आर्थिक संकटों में फंसा था 1917 के 7 नवम्बर को रूस की बोल्शेविक क्रान्ति एक सफल सर्वहारा राज्य की स्थापना की अपनी लड़ाई में सफलतापूर्वक कामयाबी हासिल कर ली। इस सफलता ने विश्व के क्रान्तिकारी आन्दोलनों को एक उत्कर्ष पर पहुँचा दिया जिससे विकसित और पिछड़े पूँजीवादी दोनों देशों में ही मजदूर आन्दोलन तेजी पकड़ा और राजनीतिक ध्रुवीकरण स्पष्ट रूप से सामने आया।इस बदलाव पर अपनी टिप्पणी में लेनिन ने लिखा: पूँजीवाद और उसके अवशेषों की पूर्णता से समाप्ति (रूस में) और मौलिक रूप में एक भिन्न कम्युनिस्ट सत्ता की स्थापना उस नये युग के लक्षणों को प्रतिविम्बित करता है जिसे इतिहास ने शुरू किया है।

रूस की बोल्शेविक क्रान्ति और उसके प्रभाव के कारण विश्व स्तर पर घटने वाली घटनाओं ने भारत और ब्रिटेन के सम्बन्धों को भी प्रभावित किया। रूसी क्रान्ति ने राष्ट्रों के आत्म निर्णय के सवाल को और पुराने साम्राज्यों के विघटन के सवाल को इस कदर विश्व के सामने ला खड़ा कर दिया कि दोनों पक्षों की साम्राज्यवादी शक्तियाँ काफी सकते में आ गई। जारशाही रूस के पतन के पाँच महीने बाद ही ब्रिटिश सरकार ने बड़ी ही जल्दीबाजी में मौन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार

का ऐलान किया और इसके उद्देश्यों की घोषणा करते हुए बताया गया कि भारत में धीर-धीरे स्वायत्त शासन की इकाईयाँ और संस्थाओं का विकास किया जाएगा जिससे भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के एक अभिन्न अंग के रूप में रखते हुए इसे जिम्मेदार प्रशासन की दिशा में अग्रसर कराया जा सके। घोषणा में यह भी कहा गया था कि इस दिशा में अविलम्ब कदम उठाए जाएंगे।

मजदूर आन्दोलनों की पहल:

1914 से ही जब कांग्रेस अपने नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलनों को साम्राज्यवाद के साथ सहयोग की नीति पर चला रही थी वहीं वे मजदूर पक्षी नेता और क्रान्तिकारी, जो विदेशों में गए थे , विभिन्न देशों मे अपने लड़ाकू संगठन का निर्माण कर साम्राज्यवादी युद्ध द्वारा उत्पन्न साम्राज्यवादी देशों के अन्तर्विरोधों का फायदा उठाने के प्रयास में जुटे थे। इसी क्रम में वे ब्रिटेन से दुश्मनागत का भाव रखने वाली ताकतों के साथ सम्पर्क बनाने में जुट गए थे 1913 में ही अमेरिका में गदर पार्टी बन चुकी थी और लाला हरदयाल इसका नेतृत्व कर रहे थे 1गदर पार्टी की शाखाएँ अमेरिका के कई देशों , यू. एस. ए., कनाडा, अर्जेन्टीना आदि, यूरोप के फ्रांस , ब्रिटेन, जर्मनी, स्वीडेन और एशिया के भारत , चीन, वर्मा, श्याम, फिलीपीन आदि जगहों में कार्यरत हो गई थी

1905-08 के आन्दोलनों का प्रभाव :

1905 से 1908 तक चला मजदूर आन्दोलनों के प्रभाव का इस्तेमाल कर हलांकि कांग्रेस ने साम्राज्यवाद के साथ समझौता करके मार्ले-मिन्टों रिफार्स को स्वीकार कर लिया और आन्दोलन बंद हो गया , फिर भी इसकी उपलब्धियां काफी रही इसकी उपलब्धियों में मार्ले-मिन्टों रिफार्म , रायल कमीशन की बहाली और बंगाल विभाजन कानून का रद्द किया जाना तो था ही इसके साथ-साथ स्वदेशी आन्दोलन को इसने काफी बल पहुँचाया। 1905 की वैश्विक क्रांतिकारी घटनाओं के प्रभाव तले शुरू किया गया स्वदेशी आन्दोलन को 1905 से 1908 के मजदूर आन्दोलनों ने बल प्रदान किया। इनका आर्थिक प्रभाव चाहे जितना भी कम क्यों न

रहा हो इसका एक मनोवैज्ञानिक महत्व था जो दर्शाता था कि जन आन्दोलनों के संगठित प्रयास से ब्रिटिश साम्रज्यवाद को झुकाया जा सकता था।